ओ३म्

––सृष्टि, मानव आदि प्राणियों के शरीर और मूल वैदिक संस्कृत भाषा ईश्वरकृत हैं––

'भाषा, भाषा से बनती है और आदि व मूल भाषा ईश्वर से प्राप्त होती है'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

आज संसार में जितनी भी भाषायें हैं इनका अस्तित्व अपनी पूर्व भाषा में अपभ्रंषों, विकारों, सुधारों व भौगोलिक कारणों से हुआ है। हम बचपन में जो भाषा बोलते थे उसमें और हमारे द्वारा वर्तमान में बोली जाने वाली भाषा में शब्दों के प्रयोग व उच्चारण की दृष्टि से काफी अन्तर आया है। कुछ भाषायें हमने विद्यालयों में या पुस्तकों आदि से भी सीखी हैं। जिस या जिन भाषाओं को सीखा है उनका भी पहले से अस्तित्व है। अब हम उस भाषा पर विचार करते हैं जो वर्तमान भाषाओं का कारण है। हमें यह तथ्य ज्ञात होता है कि आज की भाषाओं के पूर्व स्वरूप को हमारे पूर्वजों ने अपने समय की भाषा में कुछ अपभ्रंशों, विकारों व उनमें सुधार करके अस्तित्व प्रदान किया था। उन्होंने अपने समय में पहले से विद्यमान भाषा के बिना ही उन भाषाओं को पहली बार स्वयं नहीं बनाया था। इस प्रकार से यदि पीछे की ओर चलते जायेंगे तो हम सृष्टि की आदि में पहुंच जायेंगे। सृष्टि की आदि में यह एक और समस्या आयेगी कि सबसे पहले जो मनुष्य उत्पन्न हुए, उनके माता–पिता तो रहे नहीं होंगे फिर उनका जन्म कैसे हुआ होगा, यह प्रश्न तो बहुत अच्छा है परन्तु इस प्रश्न के लोगों के भिन्न–भिन्न उत्तर होते हैं। कई लोग नाना प्रकार की कल्पना करते हैं और **हमारे ऋषि कोटि के विद्वान जन कहते हैं कि आदि कालीन मनुष्य अमैथुनी सृष्टि में पैदा हुए थे।** यदि मनुष्य को कुछ देर के लिए छोड़कर हम अन्य प्राणी – पशु व पक्षियों पर विचार करें तो वहां भी यही समस्या आती है। सबका उत्तर एक ही है कि अमैथुनी सृष्टि जिसको सर्वव्यापक व सृष्टिकर्ता ने कार्य रूप में अंजाम दिया। **यह अमैथुनी सृष्टि होती क्या है? यह बिना माता–पिता के सन्तानों के जन्म को कहते हैं। बिना माता–पिता के क्या सन्तान हो सकते हैं? जी हां, हो सकते हैं, इसका प्रमाण यह संसार है। तर्क से भी यह सिद्ध है कि एक न एक दिन यह जगत, सृष्टि बनी अवश्य है। सृष्टि बनने से पूर्व इसका अस्तित्व नहीं था। जब अस्तित्व नहीं था तो बनायेगा कौन? इसका उत्तर है कि किसी एक सत्य, चित्त, आनन्दयुक्त, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, अनादि, अजन्मा, अमर, सृष्टि रचना की अनुभवी सत्ता ने ही इस संसार को बनाया है।** यही उत्तर हमें वेदों से मिलता है कि एक ईश्वर है जिसमें यह सभी गुण है और वही इस सृष्टि को बनाता है और आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में मनुष्यों सहित सभी प्राणियों को उत्पन्न करता है। यह उत्तर पूर्णतः वैज्ञानिक उत्तर है।

मन मोहन आर्य

सूचना

''वेदज्ञ आचार्य रामनाथ वेदालंकार जी के जन्म शताब्दी समारोह का आयोजन हरिद्वार में रविवार 2 नवम्बर, 2014 को''

महर्षि दयानन्द की वेदार्थ शैली को सर्वांगपूर्ण अपनाने वाले वेदज्ञ आचार्य पं. डा. रामनाथ वेदालंकार जी का जन्म शताब्दी समारोह आगामी रविवार 2 नवम्बर, 2014 को हरिद्वार में आयोजित किया जा रहा है। आचार्य जी ने गुरूकुल कांगड़ी में शिक्षा प्राप्त की और इसी संस्था में वेदाचार्य व अनेक पदों पर रहकर सेवा की। यहीं रहते हुए आपने वेदों पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन भी किया। गुरूकुल कांगड़ी से सेवा निवृति के बाद आप पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ की **'दयानन्द अनुष्ठान पीठ'** के अध्यक्ष रहे और यहां रहकर आपने तीन प्रमुख अनुसंधानपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया। इसके अतिरिक्त आपने सामवेद भाष्य सहित वेदों पर अनेक मौलिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। वेदों के मूर्धन्य विद्वान होने के कारण भारत के राष्ट्रपति द्वारा आपको सम्मानित भी किया गया। आयोजन के संयोजक डा. विनोदचन्द्र विद्यालंकार की ओर से आर्य जनता से इस समारोह में सपरिवार एवं इष्ट–मित्रों सहित पधारने का अनुरोध किया गया है। इच्छुक महानुभाव आयोजन में सम्मलित होने के लिए कृपया **आयोजन समिति के संयोजक डा. विनोदचन्द्र विद्यालंकार जी** से उनके मोबाइल 09897509561/ 09758130593 पर सम्पर्क करें।

–मनमोहन कुमार आर्य

यदि वैज्ञानिक कहे जाने वाले लोग इसे स्वीकार न करें तो इसका अर्थ यह है कि उन्हें ईश्वर व जीव का ज्ञान नहीं है जबकि इनकी सत्ता यथार्थ है। कुछ समय लगेगा और अन्त में उनका यही निष्कर्ष होगा क्योंकि सभी अनुमान, कल्पनायें, मान्यताओं, सिद्धान्तों व थ्योरियों पर विचार किया जा चुका है और ईश्वरेतर कोई भी कल्पना व विचार सन्तोषजनक नहीं मिला है। ईश्वर, जीवात्मा व कारण प्रकृति –– अनादि, नित्य, सत्य, अजर, अमर तत्व हैं, इनकी न तो उत्पत्ति होती है और न ही नाश होता है। विज्ञान भी इस अमरता के सिद्धान्त को मानता है। ईश्वर, जीवात्मा व कारण प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण चर्म चक्षुओं से देखे नहीं जा सकते। इस न दिखने के कारण ही विज्ञान इनके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। कारण प्रकृति की कार्य अवस्था क्योंकि स्थूल है और वह आंखों से दिखाई देती है, इसलिये विज्ञान व वैज्ञानिकों को वह स्वीकार्य है। ईश्वर चेतन तत्व है अर्थात् वह हमारी आत्मा जैसा हमसे कहीं बड़ा, अनन्त परिमाण वाला है अर्थात् सर्वव्यापक व निराकार है। इसके साथ ही ईश्वर व जीवात्मा के प्रकृति के मूल स्वरूप से भी अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण इन दोनों पदार्थों का आंखों से दिखाई देना सम्भव नहीं है। आंखों का काम तो स्थूल पदार्थों को देखना है अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों को नहीं। जब हम परमाणु व अणु जो कि प्रकृति के विकार हैं व मूल प्रकृति से स्थूल हैं, उन्हीं को नहीं देख पाते तो परमाणु व प्रकृति से भी सूक्ष्म पदार्थ ईश्वर व जीवात्मा को कदापि नहीं देख सकते। हां, विवेक से इन्हें जाना जा सकता है और यही इनको देखना कहलता है। ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व से इनकार करना, यह बुद्धि की संकीर्णता व घोर अज्ञानता है। **इस ब्रह्माण्ड और प्राणियों के शरीरों को देख कर ईश्वर व जीवात्मा का अस्तित्व निभ्रान्त रूप से सिद्ध है।**

हम जब सृष्टि के आरम्भ में पहुंचते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि आरम्भ में ईश्वर ने अमैथुनी सृष्टि की थी जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। ईश्वर ने ही इस चेतनारहित जड़ ब्रह्माण्ड तथा चेतनायुक्त प्राणी जगत को बनाया है। प्राणी जगत में सभी प्राणियों की आंखे, मुंह, वाणी, जिह्वा, श्रोत्र या कान के साथ शरीर के अन्दर बुद्धि भी बनाई है जो सत्य व असत्य व करणीय व अकरणीय का विवेचन करती है। **जो सत्ता अदृश्य रहकर ब्रह्माण्ड व मनुष्यों के शरीर बना सकती है वह सत्ता मनुष्य को बोलने व भाषा का ज्ञान भी दे सकती है जिससे मनुष्य बोलने में समर्थ होता है। यदि ऐसा न होता तो शायद् ईश्वर ने मनुष्य के शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियों की रचना न की होती जिसमें कान व मुंह के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियां भी सम्मिलित हैं।** अब विचार करते हैं कि आत्मा में विद्यमान ईश्वर, भाषा का ज्ञान करा सकता है या नहीं? हम जानते हैं कि बोलने वाले की सुनने वाले के कान से जितनी अधिक दूरी होती है, उतना ही अधिक जोर से बोलना होता है और यदि बोलने वाला कान में बोले तो बहुत धीरे से बोलने पर भी व्यक्ति सुनकर समझ लेता है। बोलना तब होता है जब बोलने वाला और सुनने वाला दोनों अलग–अलग हैं। **अब यदि बोलने वाला आत्मा के भीतर है तो बोलने की आवश्यकता नहीं है।** आत्मा में उसके द्वारा प्रेरणा कर देने मात्र से ही पहले आत्मा को ज्ञान होता है और ज्ञान का उपयोग कर मनुष्य भाषा को बुद्धि व मन के सहयोग से मुंह द्वारा उच्चारित कर सकता है। हमें जब कुछ बोलना होता है तो उसमें हम अपनी आत्मा, मन व बुद्धि के साथ मुंह का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार आत्मा में उपस्थित यदि ईश्वर ज्ञान प्रदान करता है तो आत्मा से वह मन को, बुद्धि को प्राप्त होकर मुख की वाणी द्वारा उच्चारित हो सकता है। इस बात को हमें जानना व समझना है। आत्मा में विद्यमान वा उपस्थित ज्ञान को वाणी द्वारा व्यक्त करना वा बोलना सम्भव है। यह असम्भव नहीं है। **ऐसा ही सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में हुआ था या हुआ होगा।** ईश्वर ने आदि सृष्टि में प्रथम चार ऋषियों की आत्माओं में वेदों का ज्ञान, भाषा ज्ञान सहित दिया था और बोलने के की प्रेरणा भी ईश्वर ने ही की थी। **हम जानते हैं कि ज्ञान का आधार भाषा होती है। यदि भाषा न हो तो ज्ञान हो ही नहीं सकता।** वेदों का ज्ञान भी संस्कृत भाषा में है और इस कारण सस्कृत का ही ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में कराया था। यह सम्भावना है कि भाषा का ज्ञान अर्थात् बोलने के लिए भाषा का ज्ञान तो सभी अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न मनुष्यों को कराया गया था। इसका कारण हमारा यह चिन्तन है कि यदि ईश्वर सभी को बोलना न सिखाता तो हम ऋषियों से ज्ञान भी प्राप्त नहीं कर सकते थे। पहले भाषा पढ़ते जिसमें काफी समय लगता। सम्भवतः कामचलाऊ भाषा के ज्ञान के लिए एक–दो सप्ताह तो लग ही जाते। इस अवधि में मनुष्य अपना सामान्य व्यवहार कैसे करते? इसका उत्तर नहीं मिलता है।

क्या बिना भाषा के ज्ञान के मनुष्य दो–चार दिन भी अपना निर्वाह कर सकते हैं, वह भी तब जब उनका पालन करने के लिए उनके माता–पिता या कोई अभिभावक न हो। हमें लगता है कि यह सम्भव नहीं है। अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि ईश्वर ने जब मनुष्यों को जीवित जागृत बना दिया तो उनके क्रियाशील होते ही उन्हें परमात्मा ने भाषा व सामान्य व्यवहार का ज्ञान भी दिया।

भाषा के विषय में हमारा चिन्तन बताता है कि सृष्टि के आरम्भ में जब मनुष्य उत्पन्न हुए तो उन्हें बोलने के लिए भाषा की आवश्यकता थी। उस समय यदि ईश्वर उन्हें भाषा का ज्ञान न कराता तो वह स्वयं व कालान्तर में भाषा को उत्पन्न या उसकी रचना नहीं कर सकते थे। इसका कारण है कि भाषा के लिए वाक्य, उससे पूर्व शब्द, शब्द से पूर्व अक्षर या सभी प्रकार की ध्वनियों के लिए एक एक अक्षर व उन ध्वनियों को जोड़ने के लिए उन ध्वनियों के संकेतक अक्षर व मात्राओं की न्यूनतम आवश्यकता होती है। क्या वह मनुष्य व मनुष्य समूह जो भाषा व ज्ञान से पूर्णतः शून्य हैं, अक्षर व शब्दों की रचना कर सकते हैं? इसके सभी पहलुओं पर विचार व चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि मनुष्यों के लिए यह सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि अक्षरों को निर्धारित करने के लिए भी भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है और क्योंकि आदि काल में अमैथुनी मनुष्यों को भाषा का ज्ञान नहीं है, तो वह अक्षरों के निर्धारण का कार्य कदापि नहीं कर सकते और न हि किस अक्षर के लिए तालु, जिह्वा, कण्ठ, नासिका आदि का उच्चारण में कैसे प्रयोग करना है, यह ही जान सकते हैं। इस स्थिति में ईश्वर का होना सत्य सिद्ध होने के साथ यह प्रमाण कोटि का विचार, मान्यता या सिद्धान्त है कि अक्षर, मात्राओं, शब्द, वाक्य वा भाषा का ज्ञान एवं अन्य सभी विषयों का ज्ञान जिसकी मनुष्य के जीवन के लिए अपरिहार्य आवश्यकता है, वह सत्य, चित्त, आनन्द स्वरूप, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सृष्टिकर्ता ईश्वर से प्राप्त होता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिस ईश्वर व सत्ता ने इस संसार को बनाया है उसे भी तो विज्ञान व ज्ञान की आवश्यकता थी। ज्ञान क्योंकि भाषा में ही निहित होता है, अतः ईश्वर को भी अपने सभी कार्य करने के लिए एक भाषा की आवश्यकता होती है। यदि ऐसा न हो अर्थात् ईश्वर की अपनी भाषा न हो तो वह ज्ञानहीन ठहरेगा। तब इस संसार की रचना ईश्वर द्वारा कदापि सम्भव नहीं हो सकती, ऐसा हमारा अनुमान व विवेक कहता है। ईश्वर की वह भाषा कौन सी है तो इसकी एक ही सम्भावना है कि ईश्वर की भाषा वही भाषा ''संस्कृत'' है जो उसने वेदों का मनुष्यों को ज्ञान देने के अवसर पर प्रयोग की है। हम इस विषय में सभी विद्वानों के विचार आमंत्रित करते हैं।

हमारे इस लेख का प्रयोजन यह बताना है कि प्रत्येक भाषा अपनी किसी पूर्व भाषा में अपभ्रंस के द्वारा या विकारों व सुधारों व कई भाषाओं का समन्वय कर बनाई जाती है। पीछे चलते चलें तो एक अनवस्था दोष आता है। वहां केवल एक ही भाषा होती है। वह भाषा वेदों की भाषा अर्थात् संस्कृत है। वह संस्कृत मनुष्यों द्वारा बनाई गई नहीं है। वह परमात्मा प्रदत्त भाषा है जिसका विस्तार पूर्वक उल्लेख पूर्व पंक्तियों में किया जा चुका है। हम आज भी देख रहे हैं कि सृष्टि को बने हुए लगभग 2 अरब वर्ष व्यतीत होन को हैं और इतनी लम्बी अवधि में, आज तक भी संसार के सभी मनुष्य संस्कृत से उत्कृष्ट भाषा नहीं बना सके। संसार की सभी भाषाओं में अनेक दोष हैं जिन्हें दूर नहीं किया जा सका परन्तु **संस्कृत पहली भाषा होकर भी निर्दोष है।** यही इस भाषा का अपौरूषेयत्व या ईश्वरत्व है। इस सिद्धान्त को मान लेने पर भाषा विषयक सभी प्रश्नों का समाधान हो जाता है। इसी के साथ हम यह आशा करते हैं कि सभी विद्वान व पाठक हमारे विचारों से सहमत होंगे। लेख को विराम देने के साथ हम विद्वानों से उनकी प्रतिक्रया आमंत्रित करते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः 09412985121